मनुष्य बनो

६२
६३

वा०
२५.०

प्रेरणा

शुभ संकल्प

क्षमा,

प्रेम,

निष्काम कर्म,

ब्रह्म पालन,

BANSWADA

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार, सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

४—किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ-साफ अवश्य लिखना चाहिए। उत्तर के लिये जवाबीकार्ड आना चाहिए वी० पी०पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। इसका वार्षिक मूल्य २५.०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहाँ डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर न मिले व अगला अंक निकलने के एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—धनसम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ-साफ लिखना चाहिए। और पते की तबदीली भी।

—प्रकाशक

R. S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमदुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ४२	दिस० ६२ जन० ६३	अङ्क—३-४

प्रेम धारा से :

शब्द

मैं मेरी की बदल भावना, जो मन का सुख चाहता है ।
जो कुछ है समझ गुरु का, इसमें क्यों घबराता है ।१।
सब वस्तु को देने वाला, ईश्वर को समझो भाई ।
अपनी मैं को साथ लगाकर, क्यों तू दुःख उठाता है ।२।
सब कुछ बरतो समझ के उसका, नफा होये नुकसान भी हो ।
तुम तो बने मुनीम रहो, इससे तेरा क्या जाता है ।३।
यही तरीका सुख पाने का, वेद और संत बताते हैं ।
जो यह बात समझ नहीं पाते, मन तब नाच नचाता है ।४।
मन मुखी की हालत ऐसी, कभी यहाँ और कभी वहाँ ।
कभी मलवे पर कभी मल पर, कहीं चैन नहीं पाता है ।५।
सब कुछ करो समझ के उसका, फिर क्यों उसका बन्धन है ।
यही कहलाती जीवन मुक्ति, यह गुरु ज्ञान बताता है ।६।
इसी बात पर अमल करो तुम, इसी जन्म में काम बने
'गाफिल' उसमें लीन हो जाओ, सत्पुरुष जो दाता है ।७।

सम्पादकीय—

अध्यात्म विषय में रुचि रखने वाले सज्जनों के हेतु यह कथन संक्षेप में आत्मज्ञान का भंडार है। जिनमें ऐसी रुचि का अभाव है उनको कोई बात क्या समझाई जाय। यह समझेंगे भी तो कैसे समझेंगे। व्यर्थ के खंडन में पड़कर वह न केवल सारतत्व का बल्कि अपने दिल दिमाग का भी खून कर रहे हैं। उचित तो यह था कि भक्तिभाव के नियमों को समझ कर वे अपना जीवन साधन सम्पन्न बनाते और उसी राह पर चलते जो प्राचीन धर्मात्माओं ने बताई हैं। पर यह भूले हैं और बुरी तरह पर भूले हैं। आखिर यह हमारे ही अंग प्रति अंग, हमारे ही लोहू माँस और हमारे ही भाई बन्धु हैं। इसी कारण इनकी सेवा के हेतु मनुष्य बनो' रात दिन कलमी घिस-घिस करता रहता है कि यह अब भी सोचें समझें। नादान न बनें। भूल भ्रम में न फँसे। जीवन को साधन और अभ्यास की श्रेणियों से पार कराते हुए वास्तविक और सार तत्व की राह पर चलें। धर्म का मार्ग वह नहीं है जो पुस्तकों में लिखा है। धर्म का पथ वह है जिस पर यह महापुरुष चले हैं। महर्षि व्यास अपने अनुपम-काव्य महाभारत में यज्ञ के सवाल करने पर धर्मराज युधिष्टिर की वाणी से यों कहलवाते हैं :—

श्रुतियो विभिन्न स्मृतियो विभिन्ना,
न तिह मुनिर तस्य: मितम न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्वम् निहतम गुहायाम,
महाजनो येन गता सो पंथा॥

यक्ष पूछता है, धर्म क्या है? और धर्मराज उत्तर देते हैं। श्रुतियों में भेद है स्मृतियों में भेद हैं कोई ऋषि मुनि ऐसा

नहीं है जिसके मत में भेद न हो। धर्म का तत्व बड़ा ही गूढ़ है। इस कारण हे यक्ष! महाजन और बड़े लोग जिस राह पर चले हैं। वह ही पंथ है।

यह स्पष्ट और शुद्ध बचन हैं। क्यों झगड़ें और क्यों उपाधि बसावें इससे क्या मिलेगा। मैदान साफ है। हमारे महापुरुष सच्चा मार्ग दिखा गये हैं। उस पर क्यों नहीं चलते। खुदे हुए कुँए का जल मौजूद हैं। क्यों और कुआ खोदने में समय नष्ट करें। जीवन यों ही समाप्त हो जायगा और कुछ भी हाथ न आयेगा। करनी करो कथनी को छोड़ो। करनी को छोड़ो। करनी भी वह करो जैसी हमारे महापुरुषों ने की है और तुम्हारा कल्याण होगा।

करनी कारज मान हैं कथनी कथे अपार।
इन बातों क्या पाइये साहब का दीदार॥
करनी करे सो पुत्र हमारा कथनी कथे सो नाती।
रहनी रहे सो गुरू हमारा हम रहनी के साथी॥
बानी तो पानी भरे चारों वेद मजूर।
करनी तो गारा गरे रहनी का घर दूर॥
कथनी बदनी छोड़ कर करनी सो चितलाय।
नर को नीर पिलाय बिन कबहु प्यास न जाय॥
बिन करनी कथनी कथे गुरु पद गहे न सोय।
बातों के पकवान से धापा नाहीं कोय।

इस पर विचार करने और स्वयं प्रकृति के कारोबार को देखने से स्पष्ट रूप में नजर आ रहा है कि जीवन परिवर्तन की श्रेणियों में होकर व्यतीत हो रहा है। नादान है वह पुरुष जो एक जगह अड़ जाता है। अड़ा सो पड़ा। पड़ा सो गड़ा। गड़ा सो मड़ा। जीवन को बीज रूप मछली की सूरत

में प्रगट होकर मच्छ बाराह, नरसिंह, बामन, परसराम, राम कृष्ण के मरहलों से गुजरते हुए बुद्ध के रूप में तुरिया पद में आना और फिर कलकी भगवान के रूप में तुरियातीत हो जाना है। भूलो मत—कोशिश करो कि जीते जी इसी एक जोवन में सब कुछ साक्षात्कार हो जाय। आदि के धार्मिक यम नियम केवल मन को शुद्ध करने के साधन हैं। पहले चित्त को स्थिर करो फिर उसके उपरान्त अपने परिवर्तन करते हुए उस वक्त तक बराबर तबदील होकर उन्नति करते चलो जब तक परम पद के अधिकारी न बन जाओ। यों ही क्या बातें बनाते हो। कुछ करना धरना भी है। व्यर्थ में समय और जीबन नष्ट करने से क्या लाभ। सुनो गुरु कबीर साहब की बाणी सुनो और ध्यान देकर सुनो जो तुम्हारे भी कुछ पल्ले पड़ जाय—

१—कबीर रोड़ा हो रह बाट का तज आपा अभिमान।
लोभ मोह त्रष्ना तजे ताहि मिले निज नाम॥
२—रोड़ा हुआ तो क्या हुआ पंथी को दुख दे।
साधु ऐसा चाहिये जैसे पैंडी खोह॥
३—खोह हुआ तो क्या हुआ उड़ उड़ लागे अंग।
साधु ऐसा चाहिये जैसे नीर पतंग॥
४—नीर हुआ तो क्या हुआ जो ताता सीरा होय।
साधु ऐसा चाहिये जो हरि ही जैसा होय॥
५—हरि हुआ तो क्या हुआ जो करता धरता होय।
साधु ऐसा चाहिये जो हरि भज निर्मल होय॥
६—निर्मल हुआ तो क्या हुआ जो निर्मल माँगे ठौर।
मल निर्मल ते रहित हैं ते साधु कोई और॥

'मनुष्य बनो' के पढ़ने वालो! हमारी बातों का बुरा न मानना। हम जो बातें हैं प्रेम सहित तुम्हारे हित के लिये

कहते हैं। हमारा स्वभाव कठोर बचन कहने का नहीं। न हम अपशब्द ही कहते हैं। वार्तालाप के सिलसिले में लेखनी द्वारा सम्भव है कोई कड़ी बात भी निकल गई हो। पर एक प्रेमी सेवक के नाते सब कोई उसकी सुनता सहता है। ऐसा ही हमारा भी हाल है। हम तुम्हारे सेवक हैं। सेवा करते हैं, उसका बदला तक नहीं चाहते। हम में तुम्हारा प्रेम है। हम जो कुछ जीवन के इस मरहले में कर रहे हैं वह केवल तुम्हारे भले के हेतु कर रहे हैं। सेवक से गलती की भी सम्भावना रहती है। पर है तो वह प्रेमी सेवक! उसकी सुनो! जीवन को साधन सम्पन्न बनाओ? काम में लगो। इस घिस-घिस का केवल अभिप्राय इतना ही है और बस।

आओ लगे हाथ ऊपर की बाणी की व्याख्या भी करदें। जिससे वह भले प्रकार तुम्हारी समझ में आ जाय। ऊपर कबीर साहब ने सात श्रेणी दिखाई हैं। सात ही श्रेणियों का भेद तुम्हारी गायत्री के प्रणायाम मन्त्र में भी आया है।

ओ३म् भूः, ओ३म् भुवः, ओ३म् स्वः, ओ३म् महः, ओ३म् जनः, ओ३म् तपः, ओ३म् सत्यम्। ऊपर की बाणी में भी सात ही श्रेणी या मरहले दिखाये गये हैं। अब आगे हम कबीर साहब के बचन की व्याख्या करते हैं :—

(१) कहते हैं चित्त स्थिर करो। सच्चे पंथाई बनो और सच्चे पंथ में रोड़ा बन कर पड़ जाओ। जिससे मन शांत हो। यम और नियम को धारण करो? मोह तृष्णा और लोभ को छोड़ो। तबही जाकर तुमको सत पद, सतनाम, निजनाम और निजस्वरूप की प्राप्ति होगी। जब तक इस श्रेणी को पार न किया जायगा तब तक सत पद का पाना तो दूर रहा भले प्रकार से नाम की भी प्राप्ति तुमको कठिन होगी।

(२) लेकिन यदि कोई मनुष्य पंथ का रोड़ा भी हुआ तो

क्या हुआ ? अड़ने में भलाई नहीं है । अड़कर अगर राह में तुम किसी पथिक को ठोकर देने लगे तो बात क्या हुई । लोग पंथाई और सम्प्रदायी तो बने मगर अकड़ते हुए दूसरों को दुःख देते हैं । अपने को अच्छा और दूसरों को बुरा समझते हैं । आप धर्मात्मा और दूसरों को अधर्मी बताते हैं । यह हिंसा का मार्ग है । इस प्रकार के पंथाई होने से क्या लाभ ? साधन करने वाले साधु को तो राह में खाक और धूल के समान होना चाहिये । अड़ोमत, गड़ोमत । अडकर और गड़कर सड़ो मत । सड़ाइँद अच्छी नहीं । खाक हो जाओ । दूसरों के पग तुम पर पड़ें और तुम उनकी सहो तब तो बात है ।

(३) पर अगर धूल और खाक भी हुए तो क्या हुआ । यदि धूल उड़-उड़कर दूसरों के शरीर और कपड़े लत्तों को मैला करती है और उनको दागदार बनाती रहती है, तब तो कुछ बात न हुई । योगी ने योग से शक्ति पाई और यदि वह सिद्धि शक्ति दूसरों को सताती, उनमें दोष दिखाती और उनको भद्दा बनाती है तो वह अच्छी नहीं हुई । इस कारण साधन करने वाले साधु को ऐसा होना चाहिये जैसे पानी होता है । पानी औरों के मैल को धोता है । साधु को भी उचित है कि यथा शक्ति सबको निर्दोष बनावे । उनके अवगुणों को न देखता हुआ उनको सद्मार्ग पर लगावे और उनका उपकार करे यह सच्चे साधु की पहिचान है ।

(४) फिर भी जिस प्रकार जल यदि गर्म हो तो शरीर को जला देगा । शीतल हुआ तो शरीर को कम्पायमान कर देगा । कमजोर मनुष्य इसके कारण बीमार होंगे और दुःख अनुभव करेंगे । उसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति गर्म और सर्द पानी के समान दूसरों के अवगुणों को धोता तो है मगर सख्ती से काम लेता है । यह सख्ती इनके लिये दुखदाई प्रतीत

होगी। और यह भी अपने दर्जे से गिर जायगा। सुधार उद्धार कराते समय कटुवचन, उत्तेजित होकर या आलसीपन का व्यौहार करना साधु स्वभाव के विरुद्ध है "सत्यम् ब्रूयात प्रियं ब्रूयात। ने ब्रूयात अप्रयम् सत्यम्। सत्य भी बोलो तो प्रिय हो। ऐसा सत्य भी किस काम का जो अप्रिय हो। साधन करने वाले साधु को चाहिये कि वह ईश्वर के समान और अनुरूप हो। ईश्वर अवगुण देखता है पर ध्यान में नहीं लाता। लोग उसको गलती १ बुरा भला भी कहते रहते हैं। पर वह सबको रोजी पहुचता है। इसी प्रकार साधु सबकी सहन करता हुआ सबका उपकार करता है।

(५) पर यदि साधन करने वाला साधु ईश्वर के समान ईश्वरीय वाला होकर करता धरतापने का अहंकारी है तो अभी तक उसमें अहंकार है। अहंकार अज्ञान की जड़ है। यह वह झोना सूक्ष्म बन्धन है जो दृष्टि गोचर न होता हुआ जीवों को संसार, में फंसा रखता है। अहंकार जगत का मूल है। इसी के आधार पर सबका खेल होता है। इसलिये अहंकारी होना साधुपन का लक्षण नहीं है। साधु को चाहिये कि हरि का भजन कर निर्मल हो जाय। अहंकार का नाम तक भी उसमें शेष न रहे। सेवा करे। सेवा का अहंकारी नहीं। भक्ति भाव सिखाये। भक्ति सिखाने का गर्व नहीं। अ पा का दोष उसमें न आवे। वह निर्मल हो। मल से पाक हो। सारे दोषों को धोकर बहा दे और अपने आत्म तेज में प्रकाशवान रहे।

(६) फिर भी यदि वह निर्मल होकर अपने तेज में प्रकाशमान है और एक स्थानी है। जगह माँगता है। ठौर ठिकाना तलाश करता है तो अच्छा नहीं। सप्तऋषि अपने तेज के साथ निर्मल होकर आकाश में चमक रहे हैं।

महाराज ध्रुव भक्ति करके शुद्ध और पवित्र होकर ध्रुव तारा बने हुए हैं। यह एक स्थानी हो गये। मंडलीक हो गये। ऊँचे चढ़कर भी बद्ध हैं। बन्धन अब तक भी नहीं कटा यह मुक्ति कब है। साधु को मंडलीक होने, एक स्थानी होने और ठौर ठिकाना माँगने से परहेज करना चाहिये।

(७) जो मल और निर्मल दोनों से रहित हैं। जो सत और असत दोनों से अलग हैं। जो गुण और अवगुण से परे हैं। यह साधु कुछ और ही होते हैं। और वास्तव में यह ही सच्चे साधु हैं। यह साधु का लक्षण हैं! यह तुरिया तीत परमपद है। यह ही धुरपद है। इष्ट है। सच्चा Ideal है। सच्चा निर्वाण है। केवलपद मुक्ति और सब कुछ है।

प्रिय पाठक गण !

गत माह झगड़े, फसाद एवं शहर में कर्फ्यू रहने के कारण हम आपकी सेवा नहीं कर सके। अत: माह दिसम्बर एवं जनवरी ६३ का अंक नये वर्ष की शुभ कामनाओं के साथ आपको समर्पित है।

सम्पादक

[गतांक पृष्ठ २४ से आगे]

माली हूँ। राजा साहब ने मुझसे गुलदस्ते माँगे थे। थोड़ी देर हो गई है। तुम मुझे न रोको। मैं स्वयं उनसे भेंट करूँगा। मेरे मालिक यहाँ पहले से ही आये हुये हैं। द्वारपाल को उमरावसिंह और बीसलदेव के मेलजोल का पता था। नौकर सदा अपने मालिकों के हृदय को देखा करते हैं। वह महलों की चोटी के हवाई कौवे होते है। जिधर को वायु का रुख होता है, उसी ओर स्वयं भी मुड़ जाते है। यदि वायु चारों ओर से चलती है, तो फिर वह ऊपर नाचते हुये इस प्रकार का खेल दिखाते हैं कि लोग देख देखकर आश्चर्य में पड़ जाते हैं। द्वारपाल हँसा—"बहुत अच्छा! अगर यह बात है, तो तुम जाओ। सामने बैठक में महाराज तुम्हारे मालिक के साथ बैठे हुये हैं।" गंगाराम के साथी तो वहाँ ही द्वारपाल के पास ड्योढ़ी में बैठकर आग सेकने लगे और यह बेखटके बैठक की ओर बढ़ा। द्वार बन्द था। वहाँ और कोई आदमी नहीं था। गुप्त मंत्रणाओं के अवसर पर नौकरों तक को आज्ञा नहीं होती कि आस पास बैठ सकें। द्वारपाल की बेपरवाई सम्भव है संयोग से हुई हो। उसने इसका लाभ उठाया। वहाँ धीरे धीरे आया और दरवाजे से अपने कान को लगाया। दोनों बातचीत में व्यस्त थे।

एक ने कहा—'नकशा तो हाजिर है। मैंने हृदय कठोर करके इसे बनाया है। मुझे इसके बनाने में जो कष्ट हुआ है वह मैं ही जानता हूँ।'

दूसरा बोला—'विश्वास रखिये। इस नकशे की बदौलत आपकी हार्दिक कामना पूर्ण होगी।'

उसने कहा—'चित्त को क्या करूँ वह बेचैन हैं। हृदय चुटकिया लेता है। बीसलदेव ने कभी ऐसी गद्दारी नहीं की।'

दूसरे ने उत्तर दिया—गद्दारी कैसी ! बमौदा से तो आपका कोई सम्बन्ध नही है । फिर रायदेवा यहाँ आयेगा । और शाही सेना वहाँ पहुचकर अपना काम करेगी ।'

वह बोला—'मुझे आशा नहीं है । रायदेवा बला का आदमी है । आप यह न समझें कि कोई आदमी सरलता से शेर की माँद में पहुंचने का साहस कर सकेगा । बमौदा का किला बहुत दृढ़ है और एक एक हाड़ा जानकर खोलते हुए इसकी रक्षा करेगा ।

इसने कहकहा मारा—'देखा जाये, अगर मेरा नाम उमरावसिंह है तो मैंने जिसको प्रारम्भ किया है, उसे अधूरा न रहने दूँगा और आपका पुत्र कहलाने का अधिकार प्राप्त करूँगा ।' अभी कठिनता से यह शब्द मुख से निकले थे कि गंगाराम ने द्वार खोल दिया । नमस्कार किया । गुलदस्ते भेंट किये यह दोनों आश्चर्य के चित्र से बन गये । उनको आशा नहीं थी कि किसी अन्य व्यक्ति को बिना आज्ञा भीतर आने का साहस होगा । उमरावसिंह यद्यपि पहले कुछ घबरा गया मगर हँसकर उसने कह—'गंगाराम ! तुमने आने में बड़ी देर की । मुझे बहुत राह देखनी पड़ी ।'

गंगाराम—'सरकार जानते हैं कि राज दरबार में आते हुये हम गरीबों को कठिनाइयाँ पेश आती है मैं अपने साथियो को लेकर इधर आया । द्वारपाल ने रोकना चाहा उसे देर तक समझाता रहा । अब हाजिरी का अवसर मिला ।

उमरावसिंह ने गुलदस्ते हाथ में लिये । उसकी प्रशंसा की। इसके बाद कहा—'अब तुम चलकर बाहर ड्योढ़ी पर बैठो ।'

गंगाराम—'हुजूर आज्ञा दें तो मैं गुलदस्ते को अपने हाथ से सजाकर रख दूँ ।'

उमरावसिंह—'बहुत अच्छा ! ऐसा ही करो ।'

गंगाराम मुँह से बातचीत कर रहा था, मगर आँखें किसी दूसरी ओर थीं। उसने बमौदा के किले के खुले हुए नक्शे का सामने ही रक्खा हुआ देखा। पास में अँगीठी रक्खी हुई थी। गुलदस्तों के सजाने के बहाने उस कागज पर हाथ बढ़ाया। बिजली के कौंधे को तो प्रत्यक्ष होने में देर भी लगती है, मगर उसके हाथों को कागज के उठाने और जलती हुई अँगीठी के अन्दर डालने में कुछ भी देर नहीं लगी। वह भक से जल उठा। उमरावसिंह के क्रोध का पारा हद दर्जे पर पहुँच गया। उसने चाहा कि जलते हुए कागज को अँगीठी से उठा ले। गंगाराम आगे आया। हँसकर कहा—'सरकार सर्दी बहुत पड़ रही है जरा आग को तेज हो जाने दीजिये। सरकार बड़े आदमी हैं। ईश्वर ने नाना प्रकार के गर्म कपड़े दे रक्खे हैं। मुझ करीब को देखिये देह पर गाढ़ तक के साबित कपड़े नहीं हैं। तनिक मुझे तो आग सेक लेने दीजिये।'

उमरावसिंह—'कमबख्त! बेशऊर, असभ्य और धृष्ट! हटजा।'

गंगाराम—'सरकार यह जल जाये और मैं हाथ सेक लूँ तो अभी चला जाऊँगा। मैं यहाँ रहने के लिये तो नहीं आया।'

उमरावसिंह क्रोध में आकर उठ खड़ा हुआ। उसने मारने के लिए हाथ उठाया।

गंगाराम बोला—'सरकार! बड़े आदमी तुच्छ नौकरों पर हाथ नहीं उठाते। आप राजा हैं दुनिया आपको क्या कहेगी! कुछ आपको दुनिया का भी भय है या नहीं। इस कागज को तो जलकर राख हो जाना चाहिये अन्यथा यह सरकार के अपयश का प्रमाण सिद्ध होगा। इसे कोई शक्ति इस समय जलने से नहीं रोक सकती, क्योंकि गंगाराम

शारीरिक बल के लिहाज से सरकार की अपेक्षा बलवान है।'

उमरावसिंह और बीसलदेव के कान खड़े हुए।

उमरावसिंह ने अपने क्रोध को शान्त कर लिया। 'तू नौकर नहीं है। नौकर के भेष में कोई और ही आदमी है।'

गंगाराम—'सरकार की बुद्धि की गम और समझ बढ़ी चढ़ी है।'

उमरावसिंह—'तू नौकर नहीं है न माली है।'

गंगाराम—'मैं सरकार के आकृति विज्ञान (कयाफा शनासी) का खंडन नहीं कर सकता।'

उमरावसिंह—तू कौन है ?'

गंगाराम— सरकार में एक छोटा राजपूत हूं।'

उमरावसिंह—'अफसोस ! तूने मुझको कहीं का नहीं रक्खा।'

गंगाराम—'मैंने इस समय वह काम किया है कि अगर कोई गुण ग्राहक होता तो न केवल शाबाशिया देता, किन्तु पीठ ठोककर मालामाल कर देता। एक ओर मैंने अति सुन्दर फूलों के गुलदस्ते पेश किये, दूसरी ओर इस जलते हुये कागज की लपटों से फुलझड़ी का खेल दिखा दिया और सरकार ने मुझे यह पुरुस्कार दिया कि गालियां दीं। मारने को उठे। क्या सच्चे राजपूतों को यही पुरुस्कार दिया जाता है ?'

उमरावसिंह और बीसलदेव दोनों आश्चर्य के चित्र बन गये। धन के पुजारी उमराव ने कहा—"मैंने इस कागज के लिये कितने रुपये खर्च किये, कितनी युक्तियाँ कीं और यह क्षण मात्र में जला दिया गया। मेरी आशा के हवाई किले इस प्रकार नष्ट कर दिये गये कि जिसकी कल्पना भी नहीं थी।'

गंगाराम—'सरकार चिन्ता न करें। रुपया कौड़ी कौड़

हिसाब करके सरकार के खजांची के पास पहुँचा दिया गया है और हवाई किले की जड़ ही कहाँ पड़ी है जो वह अधिक देर तक ठहर सकती। इनका ऋण चुक गया। यह स्वतन्त्र हैं और दुर्गावती पर आपका कोई अधिकार नहीं है। वह तो उसकी होगी जिसने रतनगढ़ का किला विजय कर लिया है और समय पर अपने अधिकार में लेगा। फिर भी बीसलदेव को स्वतन्त्रता है कि यदि वह दूसरे अधिकारी का देना चाहें तो देदे।'

उमरावसिंह समझ गया। बीसलदेव की आँख खुल गई। उसके चेहरे से शर्म के मारे ऐसे कठिन जाड़े की ऋतु में पसीनों की धार जारी हुई। कौन जाने उसकी आँखों से गैरत और लज्जित के आँसू भी टपके होंगे, मगर वहाँ कौन देखने वाला था जो उधर ध्यान देता।

उमरावसिंह—'तुम शेर की मांद में आये हो। तुम्हारा वापिस जाना अब कठिन है।'

गंगाराम—'सरकार तो केवल अमीरों के शेर हैं। अमीरों के शेर तो भाड़े के टट्टू होते हैं। प्रायः अमीरों के कालीन और गलीचों में शेरों के चित्र बने रहते हैं। क्या वह शेर हैं। शेर तो जीवित मौजूद हैं जिसके दहाड़ने का शब्द सुनकर सबके कलेजे पानी पानी हो जाते हैं। जो आदमी इस साहस के साथ किसी के घर में घुसता है, उसमें कुछ न कुछ विशेषता भी हुआ करती है। गंगाराम माली के बेलचे हर समय उसके हाथ में रहते हैं और उसके साथी क्यारियों के उलटने पलटने की कला में निपुण होते हैं।'

उमरावसिंह—अफसोस! मेरी आँखों पर परदा पड़ गया था। मैं तुमको जानता और पहचानता हूँ। कल भी मुझे

संदेह हुआ था, मगर धोखे में आ गया। आज आँखों के सामने से परदा उठ गया।'

गंगाराम—'इस पर्दे का उठना मेरे, आपके और इनके लिये और सबके लिये मंगलकारी सिद्ध हुआ। सरकार अपनी जगह पर बैठ जाँयें। मेरी एक दो बात सुन लें। अगर अधिक बातचीत करते हैं तो वह न केवल अपयश और अपमान ही का कारण होगा, किन्तु संभव है देहली की यह गली लाशों से पट जाये और कूचों में रक्त की धारा बह निकलें। तनिक संकेत करने की देर है।'

उमरावसिंह डर गया। चुपके से बैठ गया। उमरावसिंह ने कहा—'कहो क्या कहते हो। मैं तुम्हारी बातें ध्यानपूर्वक सुनूंगा।'

गंगाराम—'तो सुनो, इस दुनियाँ में माँ बाप के कृतघ्नी, विवाहिता स्त्री को विना अपराध के त्याग देने वाले और गाय और ब्राह्मण तक की हत्या करने वाले के पाप का प्रायश्चित्य हो सकता है, परुन्तु देश, जाति और भाइयों से गद्दारी या नमक हरामी करना घोर पाप है जिसके प्रायश्चित का हिन्दू शास्त्र में कहीं भी उल्लेख नहीं आया है। अगर मेरी बात पर विश्वास न हो तो मनुस्मृति, याज्ञवलक्य स्मृति, नारद स्मृति, पाराशर स्मृति अथवा अन्य स्मृतियों को देखकर अपना विश्वास कर लीजिये। ईश्वर सबको क्षमा करता है मगर कौमी गद्दार और देश के साथ बेवफाई और नमक हरामी करने वालों के पाप कभी क्षमा नहीं किये जाते हैं। वह रौरव नर्क में पड़ता है और नाना प्रकार की यातनायें सहता रहता। वह हत्यारे मक्कार, चोर और छलिया से भी अधिक घृणा के योग्य हैं। जयचंद ने शहाबुद्दीन के हाथ

अपने देश को बेच दिया। आज कौन हिन्दू है जो उठते बैठते उसको गालियाँ नहीं देता। जो आदमी अपने देश का नहीं हुआ, शत्रु तक ऐसे नीच आदमी का विश्वास नहीं कर सकते। पृथ्वीराज चौहान ने अपना सर देश प्रेम की तलवार के हवाले किया, आज तक हम सब लोग उसकी वीरता पर गर्व करते हैं। और अन्तःकरण से हर समय आशीर्वाद देते रहते हैं। जैचन्द ने देश बेचने का अपराध किया। उस पर शैतान से अधिक हर आदमी धिक्कारता है। मित्रों की मित्रता के हक को बेचना बुरा है। किसी विश्वास करने वाली स्त्री की आबरू बिगाड़ना भारी पाप है। बाप की हत्या, स्त्री और माँ पर हाथ उठाना भी बुरा है, मगर देश की गद्दारी और कौमी बेवफाई सबसे अधिक घृणा योग्य और सबसे बड़ा और बुरा पाप है। निजी लालच और हबिस में पड़कर आदमी अत्याचार और कपट कर्म कर जाता है। संभव है कि वह कुछ संभल कर आदर और मान वाला बन जाये लेकिन इतिहास के पृष्ठों में ऐसे एक भी व्यक्ति का नाम नहीं आता जिसको स्वयं उसकी संतान आदर से याद करती हो। अब जो हो गया सो हो गया, अब आगे के लिए अपने जीवन को सुधारने की चिन्ता करनी चाहिये।'

उमरावसिंह और बीसलदेव पर भय सवार हो गया। दोनों समझ गये कि वक्ता कौन है, मगर दोनों में से एक को भी साहस नहीं हुआ कि उसकी बात काटें।

गंगाराम ने उमरावसिंह से कहा—गुलदस्ते मैंने सरकार की भेंट किये। इसका पारितोषिक तो मुझे क्या मिलना था। मुझे कुछ लेने के बदले उलटे देना पड़ा जिसकी गवाही कल आपका खजान्ची देगा। अब सरकार यह करें कि बीसलदेव

को इसी समय उसके घर भेज दें। दावत को तर्क करें इस घटना की कानों कान किसी को पता न होने पाये, इसका ध्यान रहे। मेरे आदमी बाहर मेरी प्रतीक्षा में होंगे। अब मुझे जाने की आज्ञा प्रदान हो।'

बीसलदेव ने उमरावसिंह की आज्ञा को आवश्यक नहीं समझा। वह उठा। फाटक तक उमरावसिंह पहुँचाने आया। वह अपने निवास स्थान की ओर गया। और गंगाराम भी वहाँ से अदृश्य हो गया।

—o—

उन्नीसवां प्रकरण

गंगाराम और बाप बेटी

सोच समझ कर पग धरो, अति टेढ़ी है राह।
बिना विवेक विचार के, कभी न हो निर्वाह॥

उमरावसिंह की दशा अवर्णनीय थी। वह लाज के मारे खा पीकर सो रहा। जी में तो आया कि बादशाह को जाकर रायदेवा के देहली में रहने का पता दे, मगर रात अधिक हो गई थी और फिर गंगाराम माली कह भी गया था कि इस घटना का किसी को कानोंकान पता न होने पावे।

इसके सिवाय उसका कौन विश्वास करता—"रायदेवा बुरी बला है। कौन जाने उसके आदमी कैसे वेष धारण किये हुये कहाँ कहाँ रहते होंगे। उस समय इसके हृदय में यह संदेह भी हो गया कि कहीं उसके साथी स्वयं उसी के महल

में न रहते हों। कपटी आदमी का दिल ही कितना होता है। वह सोच समझ कर सो रहा, और अपनी विवशता और अपमान के स्वप्न देखा किया।

बीसलदेव घर पर आया। चेहरे का रंग फीका! मुख पर हवाइयाँ उड़ती हुई! अपने आपको धिक्कारता हुआ कि रायदेवा का यह उपकार रतनगढ़ के किले को शत्रुओं के हाथ से निकाल लिया और मेरा यह नीच व्यवहार! जब वह घर पहुंचा, दुर्गावती जागती थी। बाप की शकल देखी। पूछा कि क्या हाल है। उसने कहा कुछ नहीं। तबियत कुछ खराब हो गई है

बेटी ने कहा—'सो रहिये। वह सोने से सँभल जायगी।' मगर अभी तक सोने का प्रबन्ध भी नहीं हुआ था कि एक नौकर आकर खबर दी—'गंगाराम माली आया है और कुछ जरूरी बात कहना चाहता है।'

बीसलदेव ने उसे अन्दर बुला लिया। दुर्गावती से कहा—'तुम यहाँ न रहो।' गंगाराम से बोला—'कहो क्या कहते हो? मैं समझ तो गया कि आप स्वयं रायदेवा हो मगर मैं आपके मुख से आपका नाम सुनना चाहता हूँ।'

गंगाराम—'आप गलती पर हैं। मैं रायदेवा का भाई हूँ। रायदेवा रतनगढ़ के किले में है। वह अभी राजस्थान से नहीं आया। मगर वह देहली आ गया होता तो क्या किसी को ज्ञात न होता।'

बीसलदेव—'मैं कैसे विश्वास करूँ।'

गंगाराम—मेरी शकल देखो। मैंने ही शिवपुर में आपको बचन दिया था कि देहली में जाकर रायदेवा को आपका संदेशा सुना दूँगा। उस समय मेरे डाड़ी थी। अब डाढ़ी मैंने मुंड़ाली है। देहली में आकर तुर्कों का रंग ढंग मुझे पसंद

नहीं आया। मैंने रायदेवा को सब कुछ सुना दिया। कीकरी की लड़ाई के बहाने से वह राजस्थान गया। वहाँ से निबट कर पठानों के हाथ से रतनगढ़ के किले को छीन लिया और आपनी बाट देख रहा है। आप तुरन्त जाइये वह रतनगढ का किला आपको दे देगा और तब देहली वापिस जायेगा।'

बीसलदेव साधारण बुद्धि का था। उसने गंगाराम की बात का विश्वास कर लिया, मगर कहने लगा—'मैं यहाँ से कैसे जाऊँ और कब जाऊँ। अगर बादशाह से बिना आज्ञा लिये हुये जाता हूँ तो मेरे पीछे ही सेना चल देगी और अगर आज्ञा लेने का इरादा करता हूँ तो मुझ कभी आज्ञा नहीं दी जायगी। मेरी हालत देहली में कैदी की हो गई है। जिस प्रकार कोई चतुर शिकारी किसी पखेरू के पंख व बाल खींचकर अपने मकान के आँगन में छोड़ देता है और उसके उड़ने ओर से निश्चिन्त हो जाता है, वैसे ही मैं पंगु और खसोटा हुआ बेपर का पखेरू हूँ। मैं ही कुछ अपना ह जानता हूँ या वह शिकारी जानता है जिसने मुझे अपने जा में बुरी तरह फँसा लिया है।'

गंगाराम—'मुझे हर बात का पता है फँसाने वाले फँसाते हैं। छुड़ाने वाले छुड़ाते हैं। यहाँ बन्धन और मुक्ति दोनों प्रकार के नियम काम करते हैं। जहाँ बन्धन है, वहाँ ही मुक्ति है। जहाँ मुक्ति है वहाँ ही बन्धन है। अब आपको हर प्रकार की स्वतंत्रता है।

बीसलदेव—'क्या अच्छा होता कि आपकी बात सच होती।'

गंगाराम—'अधिक बातचीत करने का अवसर नहीं है। आपके हृदय में जो जो विचार हैं, उन सबका प्रतिबिम्ब मेरे

दिल में मौजूद है। मैं जान बूझकर इस समय इरादा करके आया हूँ, ताकि आपको न स्वय बोलने का समय दूँ और न व्यर्थ स्वयं बातचीत करने में समय नष्ट करूँ। अगर आज देहली से निकल गये तो रतनगढ़ का किला आपको मिल जायगा और अगर आज यहाँ से जाने में तनिक भी भूल की तो अभी तक तो आपके बाल और पर नोंचे गए हैं, कल आप पिंजड़े में बन्द कर दिये जावेंगे। उमरावसिंह खिसियाना हो गया हैं। मैंने उसका ऋण चुका दिया। इस ओर से आप विश्वास रक्खें। बाहर मेरे आदमी सहायता के लिये उद्यत हैं। आप दोनों थोड़ा थोड़ा खाना खालें और जब सोता पड़ जाय, यहाँ से घोड़ों पर सवार होकर निकल जाँय। मैं भी कुछ दूर तक आपका साथ दूँगा। मेरा घोड़ा बहुत तेज रफ्तार है। वह एक दिन में कई मंजिलें तै कर सकता है। आपके लिये जाने का प्रबन्ध कई दिनों से कर लिया गया है। आप अपनी लड़की को लेकर भाग जाइये और आज की तमाम बातें दुर्गावती को कुछ भी न सुनाइये। यद्यपि वह स्थिर स्वभाव की व बड़ी साहसी है, मगर फिर भी स्त्री है। मैं केवल यह कहने आया हूं।'

बीसलदेव—'अगर आप आज्ञा दें तो मैं दुर्गावती को बता दूँ कि रतनगढ़ का स्वतन्त्र करने वाला और उसके हाथों का अधिकारी कौन आदमी है इसके सुनने से उसके चित्त में नया साहस आयेगा।'

गंगाराम हँसा—'अगर आप इसे इतना जरूरी समझते हैं तो कह दीजिये। इसमें कोई हानि नहीं है।'

बीसलदेव ने लड़की को बुलाकर बोला—'बेटी! जिस आदमी ने मुझे रतनगढ़ का रत्न देना किया है, और जिसने उसे पहले से अपने अधिकार में कर रक्खा है, वह पटहर का

प्रसिद्ध सरदार रायदेवा है। उसी की बदौलत तेरा बाप उमरावसिंह के ऋण के भार से छुटकारा पा गया और वही रायदेवा हम दोनों को देहली के संगीन किले से स्वतंत्र कर रहा है। मैंने तुझे उसी को देने की प्रतिज्ञा कर ली है और मेरी दृष्टि में तू आज से उसकी अर्धांगिनी हो चुकी।'

दुर्गावती ने गंगराम को आश्चर्य और प्रेम की दृष्टि से देखा। गंगाराम ने बौसलदेव से कहा—'आपने अन्तिम शब्द बिना आवश्यकता के कहे। रायदेवा शायद उसे पसन्द न करेगा। वह अधेड़ है। दुर्गावती अभी युवा है। जिस व्यक्ति के मन और बुद्धि स्वतंत्रता प्रिय हैं वह सहन नहीं कर सकता कि कोई दूसरा व्यक्ति इच्छा के विरुद्ध किसी बात के बन्धन में डाला जाय। हाँ रतनगढ़ का किला आज से आपका हो गया। जिस समय आप उसमें पग रक्खेंगे, गहलौत आपका हार्दिक स्वागत करेंगे।

रायदेवा तुरन्त ही आपको किले का स्वामी बना देगा।'

बीसलदेव और दुर्गावती ने फिर गंगाराम की ओर आश्चर्य की दृष्टि से देखा। बीसलदेव ने कहा—"मैंने यद्यपि हजार पाप किये हैं मगर अब तक कोई मुझे प्रतिज्ञा भंग करने वाला नहीं कह सकता। मैंने सबसे पहले रायदेवा ही को अपनी लड़की के लिये चुना था। केवल रतनगढ़ की शर्त अवश्य थी। मेरी लड़की अब और किसी की स्त्री नहीं हो सकती।' दुर्गावती लड़की थी। लड़कियों में लज्जा स्वाभाविक ही होती है, मगर उसने देखा कि अवसर और तरह का है, लज्जा को छोड़कर बोली—'पिताजी! मैं भी प्रण करती हूँ कि इस जीवन मैं पटहर के डाकू की अर्धांगिनी होकर रहूँगी और उसके साथ डाका मारने में शामिल रहूँगी हाँ, अगर किसी कारण से उसने मुझे स्वीकार नहीं किया, तो

मैं तमाम उम्र क्वारी ही रहूँगी। मैं हरावती के अधेड़ डाकू को दुनियाँ के सब युवकों से सर्वोपरि समझती हूँ।' गंगाराम की आंखें प्रसन्नता के जोश में लाल हो गई। अब उसने अपनी वारी पर दुर्गावती को आश्चर्य दृष्टि से देखा। 'ईश्वर करे तुम्हारे रूप के प्रकाश से रायदेवा का घर और उसके हृदय का अन्धकार रूपी कोठा प्रकाशित हो। इस समय उसका कोई घर नहीं है, मगर इसमें संदेह नहीं है कि वह ऐसे रत्न को पाकर अपने आपको भाग्यशाली समझेगा। अब आप कुछ खा पी लें और मेरे साथ चलें। आज की रात सब ... हैं। कल यह दशा न रहेगी।'

बाप बेटी दोनों ने भोजन किया। कपड़े पहिने, हथियार बांधे और आठ राजपूतों को साथ लिया। नौकरों को वहाँ ही छोड़ा। घर से बाहर निकले। अपने घोड़ों पर सवार हुये। गंगाराम का घोड़ा भी एक जगह कसा कसाया तैयार था। वह भी सवार हुआ। इन आदमियों के गिरोह ने देहली से बाहर निकल कर जंगल की राह ली। गंगाराम कई मंजिलों तक उनके साथ रहा, मगर जब उसकी वापिस आने वाली सेना रास्ते में मिली उसने बीमलदेव से कहा—'अब पिछाई करने वालों का भय नहीं रहा। अब आराम से मेरे साथियों के साथ रतनगढ़ चले जाइये। रायदेवा आपकी बाट देख रहा होगा। उसे यह मेरा पत्र दे दीजिएगा। अगर जीवन है तो मैं कभी न कभी वहाँ आकर आपसे मिलूँगा।' गंगाराम ने दोनों को नमस्कार किया, बीसलदेव उससे चिपटकर मिला है और धन्यवाद देते हुये डबडबाई हुई आँखों से अपने आंतरीय कृतज्ञता प्रगट करके विदा हुआ। दुर्गावती बड़े आश्चर्य में थी यद्यपि वह गंगाराम की ओर आकर्षित अवश्य मगर उसको यह नहीं ज्ञात हो सका कि यह गंगाराम

स्वयं रायदेवा है और उनको झूठा पता दे रहा।

वह समय इसी प्रकार का था और इस प्रकार के झूंठ को राजपूत झूंठ नहीं कहते थे। उस समय में इसकी आवश्यकता थी। यह बुद्धिमानों का सदैव से नियम रहा है।

—०—

बोसवाँ प्रकरण

गंगाराम और रायदेवा एक ही व्यक्ति था।

माया के दो रूप हैं, परगट भाव अभाव।
भाव फँसाव जाल में, दुःख पर धोये अभाय॥

प्रातःकाल हुआ। उमरावसिंह उठा। शौचादि से निवृत हुआ ही था कि उसका खजांची आया। राजा ने पूछा—'कैसे आये ?' उसने कहा—कल शाम को बहुत से रुपयों के थैले छकड़ों पर लदे हुए मेरे घर पहुँचे। यहाँ आने का समय नहीं था। सरकार यदि सो न गये होंगे तो किसी आवश्यक कार्य में व्यस्त होंगे। इस कारण से मुझे उपस्थित होने का साहस नहीं हुआ। रुपये तो मैंने रखवा लिये। इनके साथ एक पत्र भी था जो हजूर के सामने पेश करने के लिये लाया हूँ।'

उमरावसिंह ने पत्र खोला, पढ़ा। लिखा हुआ था—'नोंचे और खसोटे पक्षियों को फिर बाल मिल गये और वह पिंजड़े को तोड़ कर उड़ंच हो गये बहेलिये का दाना पानी उसके घर पहुँचा दिया गया। गंगाराम भी खुले हुये जंगलों में राम राम की रट लगाने की नीयत से चला गया। वह जहाँ के वहाँ पहुँचे।

यद्यपि इबारत बहुत साफ थी मगर उमरावसिंह की समझ में नहीं आई। यह नहीं समझा कि नोंचे खसोटे पखेरू से तात्पर्य बीसलदेव और दुर्गावती से है। वह जानता था कि अब ये किसी प्रकार देहली छोड़ कर नहीं जा सकते। न धन पास था, न और किसी को सहायता की आशा थी। मनुष्य भी कितना सकीर्ण दृष्टि वाला है। वह समझता है कि दुनियाँ में मुझ जैसा न बुद्धिमान है और न बलवान है; यद्यपि प्रकृति माता पग पग पर उसे ठोकरें दे दे कर समझाती रहती है कि केवल एक मात्र बुद्धिमान व एक मात्र शक्तिमान कोई दूसरी प्रबल शक्ति है, जो कण कण की देखभाल करती रहती है और वह एक पल के लिए भी बेसुध नहीं रहती।

मगर इतनी धनराशि का अचानक उसके खजाँची के पास क्षण मात्र में पहुँच जाना निस्संदेह आश्चर्य की बात थी। वह समय और था। रुपया इतना अधिकता से नहीं रहता था और इसका मूल्य भी बहुत था। वह स्नान आदि व जाहिरी पूजा पाठ से निवृत होकर खजाँची के घर गया, देखा सचमुच ढेर लगा हुआ था। अचम्भे में रह गया। उसने बीसलदेव पर जो कुछ व्यय किया था, उससे न मालूम कितना अधिक उसे मिल गया। वह स्वयं धन का पुजारी था। जिस प्रकार ईश्वर भक्त ईश्वर को पाकर प्रसन्न होता है, वैसे ही लोभी धन दौलत को पाकर प्रसन्न हो जाता है। लोभी का ईश्वर तो रुपया है। वह खजांची को आवश्यक बातें समझा बुझाकर दरबार में गया। जी में तो आया कि सिकन्दर को इस वृतान्त की सूचना दे, मगर रुपये के लालच ने उसे रोक दिया। भय था कि कहीं यह उससे छिन न जाये। दिन ज्यों त्यों बिताया। शाम को उसने बीसलदेव का पता लेने के लिये आदमी भेजे। पता लगा कि वह गायब है। अब जाकर उसको

आँख खुली और पत्र की इबारत उसकी समझ में आई। उमरावसिंह उसी समय शाही महल में पहुँचा, क्योंकि सिकन्दर का सबसे बड़ा विश्वासी प्रधान समझा जाता था। बादशाह के सामने उपस्थित हुआ। उसने पूछा 'वे वक्त कैसे आये ?'

उमराव ने जवाब दिया—'बुरी खबर सुनाने आया हूं।'

सिकन्दर—'वह क्या है ?'

उमराव—'बीसलदेव भाग गया है।'

सिकन्दर—'यह कैसे संभव है, उसे कौन भगा ले गया।'

उमराव - 'रायदेवा।'

सिकन्दर को विश्वास नहीं हुआ। तुम हर समय रायदेवा का स्वप्न देखा करते हो। जहाँ कोई बात हुई रायदेवा के सर मढ़ी गई। रायदेवा कोई देव या जिन तो नहीं है, जो हर समय हर जगह पहुंच कर विचित्र खेल दिखाता फिरे। वह अभी तक राजस्थान से वापिस नहीं आया। जासूस बराबर उसका पता देते रहते हैं।

उमराव—'शाही जासूस धोके में हैं। मैंने अभी कल और परसों रायदेवा को अपनी आंखों से देखा है।

सिकन्दर—'फिर तुमने मुझे क्यों नहीं कहा ?'

उमराव—'मैं स्वयं धोके में था। वह भेष बदले हुए था।'

सिकन्दर—'वह देहली में कब आया ?'

उमराव—'वह बहुत दिनों से देहली में था, बीसलदेव के यहाँ माली के रूप में नौकर था।'

सिकन्दर हँसा—राजा साहब होश की दवा लीजिये। यह आप कहते क्या हैं ?'

उमराव—मैं सच कहता हूँ।'

सिकन्दर—'आप स्वयं धोके में हैं। मुझे दिन दिन की

खबर मिलती है। कल जासूसों ने यह पता दिया कि रायदेवा रतनगढ़ गया और आप कहते हैं कि वह बहुत दिनों से देहली में मौजूद है। मैं कैसे सच मानूं।

उमराव—'हुजुर वह बुरी बला है। पता नहीं वह क्या है अगर मैंने उसे इन आँखों से न देखा होता तो कभी विश्वास न आता।'

सिकन्दर—'क्या बीसलदेव को पता था कि रायदेवा उसका माली है।'

उमराव—'नहीं।'

सिकन्दर—'यह और आश्चर्य की बात है। अगर मैं विश्वास कर लूं कि रायदेवा को तुमने देहली में देखा और वह बीसलदेव का नौकर भी था, अव्वल तो यह बात विचार में नहीं आती दूसरे वह उसे इतनी जल्दी भगाकर कैसे ले गया ?'

उमराव—'ऐसा मालूम होता है कि उसने कीकरी के पश्चात् रतनगढ़ के किले को भी जीता। भेष बदल कर देहली आया और बीसलदेव को वहाँ से ले गया।'

सिकन्दर—फिर उसको उसकी नौकरी करने की क्या आवश्यकता थी ?'

उमराव—'यह रहस्य है जिसको मैं हल नहीं कर सकता। रायदेवा के भेष बदलने के हालात हुजूर पहले भी सुन चुके हैं।'

सिकन्दर—'केवल तुम्हारी जुबानी।'

उमराव—'चित्त में बड़ा हैरान हुआ वह जो बात कहता है बादशाह उसे और ही तरह समझता है। अन्त में उसने विवश होकर विनय की—'जहाँपनाह ! बातों में समय जा रहा है। अच्छा यह होता कि हजर शाही अहलकार भेजकर

जाँच कराते।'

सिकन्दर—'हाँ, यह बात तुमने कही है।'

उसी समय सिकन्दर के कर्मचारी इस कार्य पर भेजे गये। उन्होंने सूचना दी कि बीसलदेव को गये हुये दो दिन हो गये। गंगाराम उसका माली था। वह भी लापता है परन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि वह रायदेवा था। रायदेवा के महल में पता लगाया गया। उसके आदमी कहते हैं कि अभी तक वह राजस्थान में है। इससे अधिक किसी को ज्ञात नहीं है। हाँ, परसों रात उमरावसिंह के खजांची के पास अगणित रुपया गाड़ी में लदकर पहुँचा है। तहकीकात करने वाले कहते हैं कि बीसलदेव ही की सहायता के लिये आया है। अन्तिम खबर सुनकर सिकन्दर को आश्चर्य हुआ। उमरावसिंह को बुलाकर पूछा—'यह रुपया तुम्हारे घर किस ने भेजा?

उमराव सिंह ने जवाब दिया—'रायदेवा ने।'

सिकन्दर—'फिर रायदेवा का नाम लिया गया। रायदेवा को तुम डाकू कहा करते हो। डाकू धन दौलत छीनते हैं या शाही अहलकारों के घर भेजते हैं। सम्भव है रायदेवा गंगाराम न रहा हो। गंगाराम कोई और ही आदमी हो और तुम धोका खा गये हो।'

उमराव ने वह पत्र पेश किया जो खजान्ची ने उसे दिया था। सिकन्दर ने भी उसका अर्थ नहीं समझा। तब उमराव ने कहा—'जहाँपनाह! मैंने बीसलदेव को बहुत कुछ कर्ज देकर शाही सेवा के जाल में फँसाया था। वह बिल्कुल बेबस हो गया था। उसे ध्यान रहता था कि यह ऋण किस प्रकार चुकाया जायगा और वह अपने आपको बेपंख का पखेरू

कर दिया और उसे यहाँ से साफ भगा ले गया। मेरी कोई कूटनीति काम नहीं आई।'

सिकन्दर के हृदय में नाना प्रकार के विचार उत्पन्न हुये। राजपूत कौम उसके लिये ऐसा भारी और पेचीदा रहस्य था. जो हल होने पर नहीं आता था। एक आदमी तो शाहों नमक हलाली का दम भरता हुआ कूटनीति से अपने भाइयों को बादशाह के कान का छेरा बनाने की चिन्ता कर रहा है और दूसरा बादशाह का उच्चाधिकारी होकर राजपूतों को इस जाल से छटकारा दिला रहा है मगर उसने हृदय को शान्त कर लिया, क्योंकि अधिक जाँच करने से उमरावसिंह के भी हाथ से खो जाने का भय था। उसने पूछा—यह बात क्या है कि एक ही समय में रायदेवा राजस्थान में भी रहता है और दिल्ली में आकर मौजूद हो जाता है। वह मेरे जासूसों की आँखों में भी धूल झोंकता है।'

उमरावसिंह ने जवाब दिया—"उसके पास एक अमूल्य और चालाक घोड़ा है जिसे सचमुच हवा के समान कहना चाहिये। रायदेवा उसकी बहुत कदर करता है।'

सिकन्दर—'तो जिस प्रकार अलिफ लैला की कहानी में अलाउद्दीन के चिराग का वर्णन आता है, वैसे ही तुम रायदेवा के घोड़े को जादू कहते हो।'

उमराव—'बात तो ऐसी ही है।'

सिकन्दर—'अच्छा! रायदेवा को आने दो। उसे छेड़ने की आवश्यकता नहीं है। तरकीब से यह घोड़ा उससे लिया जायगा। फिर शायद वह ऐसा जादू न कर सकेगा।'

उमराव—'मगर रायदेवा यह घोड़ा कभी न देगा।'

सिकन्दर हँसा—'देखा जायगा! मैं स्वयं यह घोड़ा उससे माँग लूँगा और वह देने से मना नहीं करेगा।'

उमराव– 'मुझे विश्वास नहीं आता। हुजुर परीक्षा कर लें।'

सिकन्दर–'मैं इस रायदेवा से तंग आ गया। अच्छा! तुमने बीसलदेव से बमौदा का नक्शा तो ले लिया होगा।

उमराव—'अफसोस! वह भी हाथ नहीं आया।'

सिकन्दर—'यह क्या कहते हो?'

उमराव—'जहाँपनाह में क्या कहूँ? नकशा तो तैयार होकर मेरे पास पहुच गया था, मगर रायदेवा भेष बदलकर मेरे घर आया और उसे जलाकर नष्ट कर गया।'

सिकन्दर—'गजब हो गया यह विचित्र निर्भय आदमी है मगर बमौदा का हाल तो तुम्हें ज्ञात हो गया होगा।'

उमराव—हाँ उसकी दीवारें हर तरह दृढ़ बनाई गई हैं दूर दूर तक जमीन के अन्दर धुस पड़ी है, जिसके चहु ओर खाइयाँ हैं, और ऊँची धुस के पश्चात किले की दिवार हैं जो स्वय जमीन में धुसी हुई हैं और धुस के बीच बीच में जमीन के अन्दर तहखाने बने हुए हैं जिसमें हर समय संतरी बैठे रहते हैं। फाटक से थोड़ फासले पर सुरंग है जिसका किनारा किले के अन्दर है और इसे बारूद इत्यादि से भर रक्खा गया है, ताकि जिस समय आक्रमण करने वाली सेना पहुंचे, आग लगा देने पर वहाँ ही झुलसकर रह जाये, और किले तक इसी तरह जगह जगह पर धुस के चहुँ ओर विभिन्न और अनेक सुरंगे बनी हुई है। यह सब हाल मैंने बीसलदेव से सुना है। जो बमौदा रह आया है जब से रायदेवा देहली आया है उसकी लूट पाटकी दौलत ने बमौदा को बहुत दृढ़ बना दिया है। अगणित हाड़ा और मेंना सेना में भरती हो गये हैं। अब उसका जीतना कठिन कार्य है।

सिकन्दर—'रायदेवा मेरे विरुद्ध मेरा ही हथियार काम में लाया। आश्चर्य है कि देहली की प्रजा का धन पटहर के पहाड़ी और जंगली स्थान को इस प्रकार दृढ़ बनाये परन्तु क्या कोई ऐसा उपाय तुम्हारी समझ में नहीं आता कि साँप मरे और लाठी न टूटे। मैं इस रायदेवा को फूटी आँख से देखना पसन्द नहीं करता।'

उमरावसिंह— उपाय तो बहुत से हैं।'

सिकन्दर—'एक दो मुझे भी सुना दो।'

उमरावसिंह—'वह कूटनीति से बेहोश करके सदैव के लिये कैद कर दिया जाये। दूसरे राजपूतों की दावत में उसे विष दे दिया जाये। तीसरे घुड़दौड़ में सिखाये हुये आदमी उस पर एक दम आक्रमण कर दें कि वह जोर न कर सके।'

सिकन्दर—'इन सब में विष देना ही भला मालूम होता है। इससे भेद न खुलेगा और रायदेवा के भय से तुम छुटकारा पा जाओगे।'

—o—

इक्कीसवां प्रकरण

गंगाराम और रायदेवा दो थे या एक

कबीर तोड़ा मानगढ़, मारे पाँच गनीम।
सीस नवाया धनी को, साधी बड़ी मुहीम॥ (कबीर)

बीसलदेव तो विदा होकर धीरे धीरे मंजिलें समाप्त करता हुआ रतनगढ़ पहुँचा। वहाँ रायदेवा का छोटा भाई

भीम मौजूद था। बीसलदेव का नाम सुनते ही वह उससे मिला। किले की ताली उसके सुपुर्द कर दी। बीसलदेव उसके साथ आदर सत्कार से मिला मगर जब यह ज्ञात हुआ कि यह किलेदार रायदेवा नहीं बल्कि उसका छोटा भाई है, उसकी आशाओं पर पानी पड़ गया। दुर्गावती के दिल को भी दुख पहुंचा। बाप बेटी दोनों ही चिन्तित थे। उन्होंने रायदेवा को देखा, मगर वह देखना न देखने के बराबर था। फिर भी किले के हाथ आ जाने से उनको जो प्रसन्नता हुई वह वर्णन से बाहर है। रायदेवा के भाई ने किला देने के बाद देहली की ओर कूंच किया। कई दिनों में वह बड़े भाई से मिला और दोनों देहली की ओर चल दिये।

बादशाह को उसके आने की सूचना मिली। मन्त्रीगण, राजा लोग और कर्मचारी विजयी सरमा के स्वागत के लिये भेजे गये। सब आदर सत्कार से पेश आये और उसे दरबार में पहुंचाया। सिकन्दर इस बहादुर की बाट देख रहा था। उसने आते ही नमस्कार किया। बादशाह ने मुस्करा कर उत्तर दिया। जीतने की मुबारिकबाद दी, पुरस्कार प्रदान किया और उस दिन रायदेवा का दर्जा और बढ़ गया। सिकन्दर राजगद्दी पर सुशोभित था। उसने कहा—'रायदेवा! तुमने पठानों को खूब हराया। पत्रकारों ने तुम्हारी वीरता की बड़ी प्रशंसायें की हैं और तुम उन प्रशंसाओं के अधिकारी हो।'

रायदेवा—'काम तो जहाँपनाह के भाग्य ने किया। मैं क्या हूँ जो काम करने का गर्व करूँ। हाँ, इसी बहाने से मुझे भी कुछ यश मिल गया।'

सिकन्दर—'कीकरी और उसके कुल इलाके तो राज्य में

सम्मिलित हो गये किन्तु तुमको वहाँ और क्या हालात मालूम हुये ?'

रायदेवा—'राजस्थान के चारों ओर और भी सरकश पठान मौजद हैं, जिन्होंने जगह ब जगह इलाकों पर अधिकार कर रक्खा है और राजस्थान और शाही राज्य की सीमा पर रहने के कारण से वह निभय हो रहे हैं। अगर बादशाह सलामत की नीयत हो तो यह सबके सब आसानी से विजय किये जा सकते हैं।'

सिकन्दर—'इन सबके विषय में फिर किसी समय तुमसे सलाह ली जायगी, परन्तु कोकरी के सिबाय तुमने और भी कोई कार्य किया या नहीं।'

रायदेवा यह जानता था कि यह सवाल किया जायगा। जवाब दिया—'जहाँपनाह ! मैंने एक साधारण निबल गढ़ी रतनगढ़ नामी भी विजय की .... ।'

सिकन्दर—'उसे भी शाही राज्य में सम्मिलित किया होगा ?'

रायदेवा—नहीं, जहाँपनाह ! नहीं। उसका इतिहास है।'

सिकन्दर—वह क्या ?'

रायदेवा—'जिस समय मैं देहली आ रहा था, रास्ते में एक बूढ़ा रईस बीसलदेव मिला। उसने मुझसे कहा कि पठानों ने उससे उसके बाप दादाओं की गढ़ी को छीन लिया है। सहायता करके उस पर अधिकार दिलाया जाये। मेरे जी में तो आया था कि उसी समय उस दीन की सहायता करूँ। मगर देहली आने की जल्दी थी, इस कारण से कुछ न कह

मिलने पर पठानों से वह गढ़ी छुड़ा ली जावेगी। अब जहाँपनाह की कृपा से वह अवसर मिल गया और मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गई।'

सिकन्दर—'क्या तुमने रतनगढ़ बीसलदेव को दे दिया ?'

रायदेवा—'हाँ, जहाँपनाह ! मैंने उसे अपने लिये तो विजय किया नहीं था। मुझे तो अब देहली में ही जहाँपनाह के चरणों की छाया ही काफी है।

सिकन्दर—'मगर बीसलदेव तो यहाँ चला आया था।'

रायदेवा—'यह मुझे शिवपुर जाने पर मालूम हुआ। जब मैंने रतनगढ़ को हाथ में कर लिया, अपने नौकर गंगाराम को देहली भेज दिया। उसे रास्ते के खर्च के लिये भी कुछ दे दिया था। जब वह बीसलदेव को वहाँ ले गया, मैं गढ़ी उसके सुपुर्द करके यहां हुजूर मैं हाजिर होने के लिये चल दिया।'

सिकन्दर और उमराव दोनों को आश्चर्य हुआ। सिकंदर को समझ में आ गया कि बीसलदेव को गंगाराम आकर ले गया है, मगर उमरावसिंह का संदेह दूर नहीं हुआ। वह मन ही मन में परेशान था। कभी सोचता था कि गंगाराम और रायदेवा एक ही व्यक्ति हैं और फिर विचार करता था कि संभव है वह दो हों मगर वह बोला नहीं। सिकन्दर चाहता था कि और बात भी पूछूँ परन्तु भय था कि रायदेवा चौकन्ना न हो जाय। यह उसको स्वीकार नहीं था। उसने रायदेवा की बहादुरी की प्रशंसा की और उसे अपने निवास स्थान पर जाने की आज्ञा प्रदान की।

[शेष अगले अंक में]

अपनी आवयश्कतायें घटाइए

आज सर्वत्र पैसे की तंगी की ध्वनि आ रही है। प्रायः सभी अपनी आय में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पा रहे हैं। भौतिक आनन्दों को पाने के लिये रिश्वत, घूस और काला बाजार चल रहे हैं। आय बढ़ती नहीं तो उनकी व्यग्रता और भी बढ़ती है।

विवेक हमसे कहता है कि इस समस्या को दूसरी तरह से क्यों नहीं सुलझाते। 'तेते पाँव पसारिये, जेती लाँबी सौर।' आय की चिन्ता छोड़कर आवश्यकताओं को घटाना प्रारम्भ कर दीजिये, जिससे इसी आय में काम चल जाय और कुछ शेष भी बच जाय।

हमें परेशान करने वाली हमारी कृत्रिम आवश्यकतायें और बनावटी जीवन है। जैसे हम हैं, उससे बढ़ा-चढ़ाकर दिखाने के हम आदी बन गये हैं। हमने पढ़-लिखकर अपने विलास तथा आराम की नाना वस्तुओं को जन्म दे डाला है। हमारी जीभ तथा वासना अनियन्त्रित हो गई है। हम दूसरों का अन्धानुकरण करने को मूर्खता कर रहे हैं। फलतः रोगी और दुःखी है।

आवश्यकतायें हमारे क्षण, स्वभाव और परिस्थिति के अनुसार घटती बढ़ती हैं। रबर की तरह चाहे जितनी बढा लीजिये, चन्चल मन का नियन्त्रण कर चाहे जितनी सिकोड़ लीजिये। जितनी अधिक आवश्यकतायें उनकी पूर्ति के लिए उतना ही श्रम, भाग-दौड़ और संघर्ष। अपूर्ण रहने पर उसी अनुपात में मानसिक कष्ट और वेदना।

मोटे रूप से आपकी आवश्यकतायें तीन प्रकार की हैं—(१) जीवनयापन के लिये जरूरी, (२) सुखविषयक, (३) विलास विषयक। प्रथम वर्ग की आवश्यकतायें पूर्ण कर अधिक से अधिक संतोष हो सकता है। वर्ग २ और वर्ग ३ की अन्तिम सीमा का कोई ठिकाना नहीं।

प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनियों ने आवश्यकता में भेद नैतिक आधार पर किया था। उन्होंने मानव के लिये उन्हीं आवश्यकतों की योजना रक्खी थी; जो सरल सादा जीवन और उच्च विचारों की पोषक थी। सुख और विलास को उन्होंने मानव की शक्तियां कुण्ठित करने वाला माना था।

भौतिक सभ्यता के युग में मनुष्य ने सुख और विलास की आवश्यकताओं को बढ़ाया; और उनके अपूर्ण रहने पर वह विक्षोभ, मानसिक कष्ट तथा अभावों की भट्टी में जलता रहा।

जीवन विषयक आवश्यकतायें क्या हैं? हम आवश्यक, सुख विषयक एवं विलास की आवश्यकताओं में विवेक किस प्रकार करें? आइये, आइये, इस प्रश्न पर विचार करें।

जीवन रक्षक आवश्यकतायें वे हैं जिनके बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। पौष्टिक भोजन, वायुयुक्त मकान, साधारण वस्त्र, रोगोपचारक सुविधायें तथा शिक्षा—ये ऐसी मौलिक आवश्यकतायें हैं जो जीव-धारण के अतिरिक्त मनुष्य की शारीरिक, मानसिक तथा शैल्पिक शक्तियों का विकास करती हैं। प्रत्येक वस्तु को इनकी पूर्ति का प्रथम प्रयत्न करना चाहिये।

इनके पश्चात उन आवश्यकताओं को पूर्ण कीजिये जो आपके सामाजिक प्रतिष्ठा के लिये जरूरी है और जिनके

लिये आपको कभी-कभी अपनी जीवन विषयक आवश्यकताओं से विमुख होना पड़ता है।

यहाँ तक आप अपने आपसे उदारता का व्यवहार कर सकते हैं; किन्तु आगे का मार्ग बड़ी जागरूकता एवं सावधानी का है। भोग सुख एवं विलास के क्षेत्र अनन्त हैं। आज के मानव की चिन्ता का कारण ये ही वर्ग हैं।

विलास एवं भोग सुख का वर्ग बड़ा लम्बा है। इसमें बढ़िया-बढ़िया वस्त्र, आलीशान मकान, गहने, मनोरंजन के कीमती साधन, मिष्ठान और ऊँचे प्रकार के भोजन, मोटर, सिनेमा क्लब का जीवन, मादक पदार्थों का सेवन, दान-दहेज की अधिकता, बहूमूल्य वाहन और कलात्मक वस्तुओं का संग्रह सम्मिलित है।

अपने पेशे, स्तर तथा वातावरण को देखिये और फिर उपर्युक्त आवश्यकताओं को कम करते जाइये। अपने सामाजिक जीवन, आर्थिक शक्ति, परिवार के सदस्यों की संख्या, स्थान एवं समय को देखिये।

जिस वस्तु को रखने की आपमें क्षमता नहीं है और जो आपकी किसी स्थायी माँग की पूर्ति न कर केवल मिथ्या प्रदर्शन मात्र के लिये है, उसे त्याग दीजिये। जिन भोजनों से आपकी कार्यक्षमता नहीं बढ़ती, केवल व्यसन के रूप में वे साथ बँधे हुए हैं उनसे तुरन्त दूर रहने लगिए। पान, सिगरेट, शराब, भाँग, चरस, बीड़ी और इसी प्रकार के दूसरे व्यसन आपकी अज्ञानता के सूचक हैं, इनके पंजे में बँधे रहना महा मूर्खता है।

मानव को शान्ति तब प्राप्त होती है, जब वह कम से कम आवश्यकताओं का बोझ सिर पर रखना है। जिसे तनिक

तनिक सी वस्तु का मोह होता है, वह उनकी अपूर्ति पर निरन्तर विक्षुब्ध रहता है।

कम आवश्यकता वाला व्यक्ति अपनी शक्ति क्षुद्र कार्यों से बचाकर उच्चतर कार्यों में व्यय कर अपनी आत्मिक उन्नति कर सकता है। देह में वासना है; वासना से असंख्य इच्छायें और इच्छाओं से कष्ट उत्पन्न होता है। जैसे हाथी के बाहर निकले हुए दाँत फिर अन्दर नहीं जाते, वैसे ही एक बार बढ़ी हुई आवश्यकतायें कम नहीं हो पाती। प्रत्येक आवश्यकता एक ऐसा महसूल है, जो चुकाना ही पड़ता है।

आज के जीवन में जो समस्यायें अत्यन्त पेचीदा हो रही हैं, जिनसे अन्तःकरण में क्षोभ उत्पन्न होता है, वे बढ़ी हुई झूठी कृत्रिम आवश्यकताओं से ही उत्पन्न हुई हैं। हम स्वयं ही इसके जनक हैं।

देखिये, आपकी प्रवृत्ति किस ओर चल रही है—क्या आप निरन्तर एक के पश्चात् दूसरी अन्धाधुन्ध आवश्यकतायें बढ़ाते चले जा रहे हैं? अनाप-शनाप व्यय कर दूसरों से ऋण ले-लेकर क्यों व्यर्थ ही अपने को बन्धनों में डाल रहे हैं? कहीं आपको मिथ्या प्रदर्शन, झूठी शान, जगत को अपना अतिरन्जित स्वरूप दिखाने की तो आदत नहीं पड़ गयी है? विलास, भोग, व्यभिचार, अभक्ष्य वस्तुओं का भोजन-पान करने की कुत्सित आदत में पड़ कर आपका चित्त चन्चल तो नहीं रहता है? यदि आप इन शत्रुओं से मुक्त रहना चाहते तो अपनी आवश्यकताओं को एक-एक करके कम करते जाइये आप सुखी रहेंगे।

हमारा सुख हमारी आवश्यकताओं के अनुपात में रहता है। अधिक आवश्यकतों वाला व्यक्ति बड़ी कठिनता से सुख

समृद्धि प्राप्त करता है। कारण, उसकी अन्तिम आवश्यकता की पूर्ति होते-होते सुख भोगने की शक्ति बिल्कुल क्षीण हो जाती है। प्रत्येक आवश्यकता एक मानसिक बन्धन है। जो इन बन्धनों में अधिक से अधिक बँधा है, उसके सुख में उतनी ही बाधायें हैं।

अधिक आवश्यकता वाला व्यक्ति जिस मानसिक रोग से पीड़ित रहता है, वह है मन का वश में न रहना, अति चन्चलता, अति स्वच्छन्दता और इन्द्रियों को वश में न कर सकना। यदि ऐसे व्यक्ति कुछ चित्तवृत्ति निरोध करें, तो बढ़ी हुई आवश्यकताओं से मुक्ति पा सकते हैं। मनुष्य मन की वृत्तियों को ढीला छोड़कर चन्चल, उन्मत्त और प्रचण्ड बना लेता है। कालान्तर में आदत बन जाने पर उनसे मुक्ति असम्भव हो जाती है। व्यसन, फैशन, व्यभिचार आदि कुत्सित आदतों का प्रारम्भ बड़ा साधारण होता है, धीरे धीरे व्यसन बढ़ते हैं। अन्त में मनुष्य इन्द्रियों का दास हो जाता है।

इसी प्रकार यदि मनुष्य मन में दृढ़ता से यह प्रण कर ले कि मुझे मन की चन्चलता, व्यर्थ के प्रलोभन इत्यादि से मुक्त रहना है तो वह मन के प्रलोभनवृत्ति को नियन्त्रित कर सकता है।

जैसे आपने व्यसन के मायाजाल को प्रारम्भ से क्षीण किया था, वैसे ही शुभ भावनाओं का प्रारम्भ कीजिये। शुभ का चिन्तन कीजिये, सद्विचार में लगे रहिये, व्यर्थ की कृत्रिम आवश्यकताओं को काटते जाइये, आप देखेंगे, आपका अन्तर्द्वन्द्व कम हो गया है। मन में अब दुःख की लहरें कम उठती हैं। अपनी पूर्णता की भावना, आत्मशान्ति की भावना अन्तर्मुखी निश्चयात्मा की भावना में दृढ़तापूर्वक रमण करने

से जिह्वावृत्ति का निरोध होता है। मन में यह भावना जमाइये—

"आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव नहीं है। एक आवश्यकतापूर्ण होती है, तो चार नयी और आकर खड़ी हो जाती हैं। इनकी पूर्ति पर बीस-पच्चीस नयी जरूरतें मुँह फैला देती है इस मायाजाल में फँसने पर आवश्यकताओं का अन्त नहीं। अतः मैं व्यर्थ इन्हें कदापि न बढ़ने दूँगा।"

कम से कम आज यह करें

आपको चाहिये कि आप यह प्रतिज्ञा करें—मैं स्वयं आनन्दित होऊँगा और अपने सम्पर्क में आने वाले दूसरे व्यक्तियों को आनन्दित करूँगा। कम से कम आज के लिये मैं जैसी परिस्थितियों में हूँ, उन्हीं में बिना चिन्ता के आनन्द और संतोष के साधन एकत्रित करूँगा। मैं अपने परिवार, पेशा या व्यापार भाग्य से—जैसा मुझको मिले हैं, उन्हीं को सुन्दर बनाने और उन्हीं में प्रसन्न रहने का प्रयत्न करूँगा।

कम से कम आज मैं अपने शरीर की उचित देख रेख करूँगा। उसमें कहाँ टूट-फूट, कमजोरी या शैथिल्य आ रहा है, उसे दूर करने का प्रयत्न करूँगा; पौष्टिक तत्त्व दूँगा, विश्राम और मनोरन्जन दूँगा, शरीर की ओर से लापरवाही नहीं करूँगा। शरीररूपी इस बहुमूल्य मशीन का उचित संचालन और उन्नति के साधन काम में लाऊँगा।

कम से कम आज मैं अपने मन को बलवान बनाने की चेष्टा करूँगा। मैं आज कोई महत्त्वपूर्ण उपयोगी कार्य

करूँगा। नीरस और शुष्क विषय के अध्ययन से मन को हटाऊँगा। मैं दृढ़ता से अपने मन को गम्भीर उच्च विषयक तत्त्वों में संलग्न रक्खूँगा।

मैं आज अपनी आत्मा को मजबूत बनाने का काम शुरू करूँगा। मैं किसी के प्रति आज कोई अच्छा सहायता का कार्य करूँगा, मैं प्रसन्न रहूँगा और दूसरों को आकर्षित करूँगा। मैं आज इतना सुन्दर बनने का प्रयत्न करूँगा, जितना कि मैं सम्भवतः हो सकता हूँ। मैं दूसरों की चुगली न करूँगा, मिथ्या दोष दर्शन में न पड़ूँगा। गुणों को उदारतापूर्वक प्रशंसा करूँगा; दूसरों के सुधार की व्यर्थ चिन्ता नहीं करूँगा। मैं आज दिन भर एक आदर्शरूप में जीवन को व्यतीत करूँगा, सारे जीवन के जंजाल या समस्याओं में एकदम न फँस जाऊँगा। मैं दो शत्रुओं को मार भगाऊँगा - जल्दबाजी को तथा अनिश्चितता को, इनका वास मेरे चरित्र में न रहेगा।'

प्रेषक : महेश

१— तमाम वेद मन्त्र जब हम उनका अभ्यास कर लेते हैं तो 'ॐ' में समा जाते हैं। आखिर में 'ॐ' समाधि में समा जाता है।

(परमहंस रामकृष्ण)

२— अनुभवी आत्मायें रंग बिरंग फूलों की तरह खिलती हैं वो सब एक ही किस्म की होती हैं लेकिन शक्लों में मुख्तलिफ नजर आती हैं।

३— जिसने अपने प्रियतम के दर्शन कर लिए हैं उसके अन्दर किसी दुनियावी चीज की तृष्णा नहीं रहती ।

(अज्ञात महात्मा)

४— धर्म या मजहब वोह है, जो इस जिन्दगी में खुशी देता है और इसके बाद की जिन्दगी में भी ।

(विशेषक)

५— धर्म जिन्दगी से कोई अलग चीज नहीं है । जिन्दगी को ही धर्म समझना चाहिये । धर्म से खाली जिन्दगी इन्सानी जिन्दगी नहीं बल्कि हैवानी जिन्दगी है ।

(महात्मा गाँधी)

६— जो हमारी जिन्दगी से जाहिर नहीं होता वो हमारा ईमान नहीं है ।

(महात्मा गाँधी)

७— बद-नियत का रोग तमाम डाक्टरों के इलाज से परे की चीज है ।

(ग्लैडस्टोन)

८— यदि तुम मेरी आँखें निकाल दो तो मैं मरूँगा नहीं, परन्तु तुम मेरा परमात्मा से विश्वास हटा दो तो मेरी मौत हो जाएगी ।

(महात्मा गाँधी)

९— सन्त के अन्दर सन्त होने का दिखावा भी नहीं होता ।

(परमहंस रामकृष्ण)

१०—इन्सान के अन्दर शान्ति नहीं हो सकती जब तक वो परमात्मा जैसा नहीं हो जाता ।

(स्वामी रामदास)

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार अपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
५—सम्पादक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द्र जी महाराज

७— मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है ।

दिनांक १५ नव०, १९८८

सुधा मित्तल

प्रकाशक के हस्ताक्षर

मिलने का पता :—

'मनुष्य बनो' कार्यालय

शिव भवन, लेखराज नगर

अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)

अवैतनिक सहायक सम्पादक

महेशचन्द्र मीतल

सम्पादक, व्यवस्थापक व प्रकाशक

श्रीमती सुधा मीतल

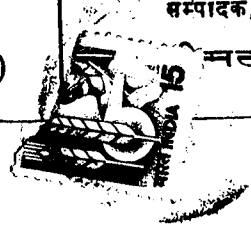

ग्राहक संख्या— 170.

श्रीमान् Chilwar Narsimhlu Hanmanthlu

General Stores V&P.O. Bansmada

Mandal Nizamabad. 503187.

Regd. NO L—ALG.28

मुद्रक : श्रीमती सुधा मीतल, दातादयाल प्रिंटर्स, लेखराज नगर, अलीगढ़